लोक उत्सवों के आलोक में हिंदी के आंचलिक उपन्यास

डॉ० अर्चना धामा
ऐसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
डी०ए०वी० (पी०जी०)कॉलेज, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)

सारांशिका

उत्सवों, अनुष्ठानों तथा प्रथाओं का लोक–जीवन में अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये ही लोक–जीवन को गति एवं बल देने के कारण और उसके विशिष्ट और विभिन्न विश्वासों के प्रमाण हैं। सामूहिक अनुष्ठान उत्सव का मूल कारण है। अति प्राचीन काल में जनता जादू–टोनों के लिए सामूहिक अनुष्ठान करती थी। ये सामूहिक अनुष्ठान ही उत्सवों का रूप धारण करते थे। इन उत्सवों का संबंध धर्म से भी जुड़ा और अधिकांश लोकोत्सवों पर धर्म का आवरण पड़ा और वे धार्मिक लोकोत्सव बन गए। उत्सवों में धर्म तत्त्व की प्रधानता होने पर उनमें आनुष्ठानिक पक्ष की जटिलता बढ़ी और इन उत्सवों का समय तथा क्रम अधिक निश्चित हुआ और लोकोत्सवों में होने वाले प्रधान मनोरंजन तत्त्व का स्थान गौण हुआ। आदिम जातियों के उत्सवों में आज भी धार्मिक उत्सवों की तुलना में समय और क्रम की अधिक अनिश्चितता तथा मनोरंजक और आनुष्ठानिक तत्त्व अधिक प्रधान है। प्रस्तुत शोध पत्र में विभिन्न लोक उत्सवों का विवेचन किया गया है, लोकउत्सव, लोक अनुष्ठान, मानव के जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, लोक संस्कृति को जीवंत बनाए रखते हैं। लोक उत्सवों का समाज पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

मुख्य शब्दः अनुष्ठान, लाडूकाज, कारापाण्डुम, माघे, देवान।

प्रस्तावना

प्रारंभिक काल में उत्सवों का संबंध कृषि तथा ऋतु परिवर्तन से था। होली, दशहरा तथा दिवाली तीनों प्रमुख त्योहारों का सम्बन्ध मूलतः कृषि व ऋतु परिवर्तन से है। भारत में ही नहीं अपितु विश्व के अधिकांश उत्सव प्राचीन काल में ऋतु परिवर्तन तथा कृषि से संबंधित ही थे। यद्यपि आज उनका मूल रूप नष्ट सा हो चुका है और वे बहुत कुछ परिवर्तित रूप में हमारे समक्ष आते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ उत्सव ऐसे भी हैं जो आधिदैविक शक्तियों को प्रभावित करने की दृष्टि से किए गए सामूहिक अनुष्ठानों से संबंधित हैं। प्राचीन काल में आदिम मानव नाग, नदियों, पहाड़ों, वृक्षों आदि को आधिदैविक शक्तियां समझता था। इनसे उनको अपने जीवन की हानि का भय था, कृषि आदि के नष्ट होने का डर था, अतः इनको आधिदैविक शक्तियां मानकर इनकी उपासना आरंभ कर दी और पुनः इन शक्तियों को प्रसन्न करने हेतु नाच–गाने का भी आयोजन किया जो बाद में उत्सव का कारण बना। विभिन्न अंचलों से संबंधित आंचलिक उपन्यासों में लोक उत्सव के अनेकानेक रूप प्राप्त होते हैं।

'जंगल के फूल और सूरज किरण की छांव' में बस्तर की गोंड जनजाति का जीवन चित्रित है। ये लोग वर्ष में एक बार 'लाडूकाज' पर्व मनाते हैं। इसमें नारायन देव की आराधना की जाती है। ये सब नारायन देव से प्रार्थना करते हैं कि वर्ष भर इनका गांव विपत्तियों से सुरक्षित रहे।

कारापाण्डुम पर्व फरवरी माह में मनाया जाता है। इसके पूर्व घास–बाँस आदि जंगली चीजों को नहीं काटा जाता।

हरपूपाण्डुमपर्व मार्च में मनाया जाता है। यह महुआ के फूल बीनने का पहला उत्सव है।

दिवाली के समय 'नुका नोरदाना पाण्डुम' पर्व मनाया जाता है। नृत्य और गीतों के साथ देवता का पूजन होता है। सभी को अकरी और कोहला (कुदई और कुटकी) बांटी जाती है। सब मिलकर प्रार्थना करते हैं – 'हे देवता, इसी तरह हमारे लिए हर साल सोना उगलें'। अक्टूबर माह के लगभग दिवाली मनाई जाती है।

'कोरतापाण्डुम'पर्व सितंबर–अक्टूबर माह में मनाया जाता है। बरसात के बाद इस दिन सबसे पहली बार खुले मैदान में नाच होता है।

'काड़ामरेंगा' पर्व फसल आने के समय मनाया जाने वाला त्यौहार है।

'मारका पांडुम'पर्व घर में विवाह के समय मनाया जाता है। इसमें आस–पास के गांवों के लड़के–लड़कियों को भी नाच के लिए बुलाया जाता है।

'वन के मन में' में भी बिहार के सिंह भूम जिले के 'हो' लोगों का जीवन चित्रित है। फसल कटने पर ये लोग 'माघे' पर्व मनाते हैं।

'शाल वनों के द्वीप' में बस्तर (ओरछा गांव) के माडिया गोंडो के जीवन का चित्रण है।

गांव के लोग जब शीतला माता के प्रकोप से ग्रस्त हो जाते हैं तो स्वाभाविक रूप से ही सारा गांव 'देवान' की शरण होता है। 'पेन–लस्किताल' समारोह होता है।

गर्मियों के अंत तथा वर्षाकाल के पूर्व 'काकसार' पर्व तब शुरू होता है जब नई फसल के लिए बीज डालने का मौसम आ जाएं –वस्तुतः बोनी से पहले एक महान उत्सव के रूप में यह मनाया जाता है और इसके बाद ही गांवों में ब्याहों का सिलसिला आरंभ होता है। काकसार की कोई एक निश्चित तिथि नहीं होती। प्रत्येक गांव का काकसार हर दूसरे भिन्न तारीख को मनाया जाता है।

'दो अकालगढ़' में पंजाब के उच्चा अकालगढ़ और नींवा अकालगढ़ के जीवन का चित्रण है। यहां के ऐतिहासिक गुरुद्वारे में वर्ष में कई बार रौनक हो जाती है। गुरु नानक, गुरु गोविंद सिंह के जन्म दिवस और गुरु अर्जुनदेव तथा गुरु तेगबहादुर के बलिदान दिवस और त्योहार इसी गुरुद्वारे में मनाए जाते हैं।

'हौलदार' में अल्मोड़ा के घौलछीना गांव का वर्णन है। 'घौलछीना' में सैम धूनी है, जहां गांव वालों के संयुक्त प्रयास से हर साल (या दूसरे–तीसरे साल) लोक देवताओं का अवतार कराया जाता है।

'ब्रह्मपुत्र' में असम के गांवों के जन–जीवन का चित्रण है। यहां वर्ष में दो बार दूबर पूजा की जाती है। पहली दूबर पूजा चैतमाह में वर्षा ऋतु से पूर्व तथा दूसरी पूजा आश्विन माह में की जाती है।

यहां बिहू उत्सव उल्लासपूर्वक मनाया जाता है। बोहाग बिहू के सात दिन माने गये हैं किंतु बिहू नृत्य पूरे बैशाख चलता है। असमिया शब्द बोहाग का अर्थ बैशाख है। वैशाख का प्रथम दिन भानु बिहू कहलाता है। इस दिन घर के सदस्य बिहू मनाते हैं।

वसंत अष्टमी पर्व के दिन दिसाँगमुख के सभी लोग ब्रह्मपुत्र में स्नान करते हैं ताकि उनके पाप क्षमा हो जाएं।

'सागर, लहरें और मनुष्य' में बम्बई के निकट बरसोवा के कोली लोगों का जीवन चित्रित है। ये लोग नारियल पूर्णिमा पर्व मनाते हैं। इस दिन प्रातःकाल से ही ये लोग रंग–बिरंगे कागजों के फूलों से, चांदी के पत्रों से, फूलों से अपने–अपने नारियल सजाकर जुलूस की तैयारी करने लगते हैं।

होली के दिनों में बरसोवा के कोलियों में नया जीवन भर जाता है।

'नई पौध' में बिहार के सौराठके एक गांव नौगछिया का वर्णन है। यहां सौराठ में विवाह के उम्मीदवारों का मेला लगता है। गांवों के लोग लड़की या लड़के का विवाह ठीक कराने सौराठ पहुंचते हैं।

विवाह में कन्यादान से पूर्व गांव की औरतें लड़कियां कुलदेवता के समक्ष मंगलगीत गाती हैं। हवन के लिए नाई लकड़ियां लाता है, कुम्हार हाथी, पातिल–पुरह(पुरोघट–मंगलकलश) और सकोरे आदि लाता है। विवाह के समय मिट्टी का पक्का हाथी सामने रखा जाता है। पातिल (हंडिया) के अंदर दिया जलाया जाता है।

'रतिनाथ की चाची' में मैथिल अंचल का एक गांव शुभंकरपुर कथा क्षेत्र है। यहां दुर्गा पूजा दस दिन चलती है। नवरात्रि के आरंभ के दिन अश्विन शुक्ल प्रतिपदा को कलश स्थापना होती है।

सतुआ संक्रांति का पर्व भी मनाया जाता है।

विजयदशमी के दिन बेतिया में बड़ा भरी मेला लगता है। इसमें गाय, बैल और घोड़े खूब बिकते हैं।

सौराठकी विवाह सभा में हजारों विवाहार्थी एकत्र होते हैं।

'दुखमोचन' में बिहार के दरभंगा जिले के टमका कोइली गांव का वर्णन है। अगहन शुक्ल पंचमी को जनकपुर धाम में प्रति वर्ष धूमधाम से राम जी का ब्याह होता है। बहुत भीड़ एकत्रित होती है। दर्शनों के लिए दूर–दूर से लोग पहुंचते हैं। संतों की पलटन भी अपनी छावनी डाल देती है।

दुर्गा पूजा में गांव के नौजवान नाटक वगैरह दिखाते हैं। तिल सक्रांति का पर्व भी उत्साह से मनाया जाता है।

'मैला आंचल' में बिहार के मेरीगंज गांव (पूर्णिया जिला) का वर्णन है। यहां के ततमाटोला, कोयरीटोला, पासवान टोला, धानुक–कुर्मी टोला की स्त्रियां प्रतिवर्ष इन्द्र महाराज को प्रसन्न करने के लिए 'जाट–जाट्टिन' खेलती हैं। बाबू टोला की स्त्रियां भी खेल के लिए आमंत्रित की जाती हैं। इस खेल में केवल स्त्रियां ही भाग ले सकती हैं और स्त्रियां ही यह खेल देख सकती हैं। पुरुषों को यह खेल देखने का अधिकार बिल्कुल नहीं है। यदि यह मालूम हो गया कि किसी ने छिपकर भी देखा है तो दूसरे ही दिन बात पंचायत में जाती है। जिसकी मूँछे नहीं उगी हुई हैं, वह देख सकता है।

'जाट–जाट्टिन' में अभिनय के साथ और भी सामयिक अभिनय तथा व्यंग्यनाट्य बीच–बीच में होते हैं।

चैत सक्रांति को सतुआनी पर्व मनाते हैं। इस दिन दोपहर को सत्तू खाया जाता है और इस रात की बनी चीजें अगले दिन खाई जाती हैं। अगले दिन 'सिरवा' पर्व होता है। पहली बैशाख, साल का प्रथम दिन। इस दिन गांव के लोग सामूहिक रूप से 'मछमरी' मछली का शिकार करते हैं। छोटे–बड़े, अमीर–गरीब सभी टापी और जाल लेकर सुबह ही निकल जाते हैं। वर्ष के इस प्रथम दिन चूल्हा नहीं जलाया जाता। बारहा मास चूल्हा जलाने के लिए यह आवश्यक है कि वर्ष के प्रथम दिन भूमिदाह न किया जाए।

होली का त्यौहार बड़े उत्साह से मनाया जाता है। फाल्गुन की हवा इन लोगों में संजीवनी फूंक देती है। सभी उत्साह से गीत गाते और नाचते हैं। एक–दूसरे पर गुलाल अबीर डालते हैं। पुआ–पकवान खाए जाते हैं।

जितिया परब (जीताष्टमी) तथा अनंत पर्व भी यहां के लोग बनाते हैं।

'परती–परिकथा' में बिहार के परानपुर गांव का चित्रण है। यहां'शामा–चकेवा' उत्सव अत्यंत उत्साह पूर्वक मनाया जाता है। प्रत्येक वर्ष लड़कियां शामा–चकेवा पर्व मनाती हैं। यह पर्व कहने भर के लिए ही कुवाँरी कन्याओं का है, साथ रहती हैं सभी। ब्याही, बेटा–बेटी वाली, अधेड़, बूढ़ी सब मिलकर गीत गाती हैं। लड़कियां मिट्टी से शामा–चकेवा और दर्जनों किस्मों के पंछियों के पुतले बनाती हैं और उन्हें रंगती है। वृंदावन भी बनाया जाता है।

पूर्णिमा से दो रात पहले शामा–चकेवा की चराई की रात आरंभ होती है। लड़कियां अपने–अपने घरों से डालियां लेकर आती हैं। डालियों में चावल, फल–फूल, पान–सुपारी के साथ पंछियों के पुतले, लंबी पूंछ वाली खंजन, पूँछ पर सिंदूरी रंग का टीका वाली पंछी, ललमुनियां, बिनरा– वृंदावन। इसमें शामा–चकेवा की जोड़ी चरती है।

शामा–चकेवा जब वृन्दावन में चरते हैं तो चुगला वृंदावन में आग लगा देता है। जली अधजली चिड़िया वृंदावन की आग को अपने छोटे–छोटे डैने से बुझाती हैं। धान, दही, दूध और मिट्टी के ढेले खिलाकर लड़कियां शामा–चकेवा को विदा करती हैं व गीत गाती हैं –'जहां का पंछी तहां उड़ि जा, अगले साल फिर से आ'।

मिथिला का यह चर्चित पर्व कार्तिक शुक्लपक्ष प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक संपन्न होता है करमा–घरमा, हाक–डाक, सुमर आदि पर्व भी इस गांव में मनाए जाते हैं।

सुल्तानों पोखरा का मेला यहां जिले भर के हिंदू–मुसलमानों का एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक मेला है। दोनों कोमों की स्त्रियां तीन दिन तक नहाती है।

मालदह जिले में प्रतिवर्ष किसी अमावस्या की रात में औरतों का मेला लगता है। इसमें बड़ी संख्या में स्त्रियां अपनी मां के नाम दिया बाती जलाने आती हैं।

'पानी के प्राचीर' में पूर्वी उत्तर प्रदेश के पांडेपुर गांव का वर्णन है।

यहां होली के दिन से नए वर्ष का प्रारंभ माना जाता है। गांव के लोग नगाड़े,ढोलक और झाल बजाते,चौतल गाते पूरे गांव में घूमकर होली जलाने वाले स्थान पर पहुंचते हैं। होली में आग लगाई जाती है तो लोग पहपट गाते हैं।

नाग पंचमी पर्व में लड़कियां व छोटे बच्चे और स्त्रियां मेंहदी रचाती हैं। लड़के चिक्का–कबड्डी खेलते हैं। लड़कियां घराऊ साड़ियां पहनकर पुतली फेंकती हैं और कजली गाती हैं।

'कोहरे में खोए चांदी के पहाड़' में देश के उत्तरी सीमांत पर स्थित जौनसार बाबर और रवाई के पर्वतीय क्षेत्र का वर्णन है। डांडे की धार (पहाड़ की चोटी) पर बसे गांव मरोड़ में पट्टी भर का सबसे बड़ा माने जाने वाला मेला लगता है। सुबह से ही सभी लोग उमंग में भरे मेले में जाने की तैयारी करते हैं। इस मेले के अवसर पर विवाहित लड़कियां अपने मायके आ जाती हैं और बड़े उत्साह से मेले के नाच गाने में भाग लेती है। इन मेलों में लड़कियों को अपने प्रेमियों से मिलने का अपूर्व अवसर मिलता है और इसी कारण कोई भी युवती मेले में जाने के लोभ को संवरण नहीं कर सकती।

जौनसार के लोग रिखनाल नदी में मौन त्यौहार मनाते हैं। यह मछली मारने का एक विशेष उत्सव है। टिमरू नामक वृक्ष की छाल को कूट पीसकर विष बनाया जाता है। यह विष जब नदी के जल में डाला जाता है तो आसपास के जल की मछलियां तुरंत मर जाती है और पानी की सतह पर तैरने लगती है। लोग इन मछलियों को पकड़कर इकट्ठा करते हैं और बाद में खाने के काम में लाते हैं। मौन की मछलियां अधिक से अधिक पकड़ना सौभाग्य और समृद्धि का सूचक माना जाता है।मौन मनाने के लिए विशेष आयोजन होता है।

निष्कर्ष–

अतः कहा जा सकता है कि जीवन को जीवंत बनाए रखने में विभिन्न लोक–उत्सव, लोक–पर्व अपना विशेष स्थान रखते हैं। व्यक्ति अपने संपूर्ण जीवन में व्यस्त रहता है, इस व्यस्तता से कुछ राहत पाने तथा कुछ समय हर्षोल्लास के साथ, बिना किसी भी तनाव के व्यतीत करने के लिए ही मुख्यतः पर्व, उत्सव मनाए जाते हैं। लोक उत्सव घर–परिवार, समाज के लोगों से मिलने जुलने का अवसर तो प्रदान करता ही है, इनके उत्सवों द्वारा परस्पर मतभेद दूर करके एकता और भाईचारा बनाए रखने में भी सहायता मिलती है और इसके अतिरिक्त लोक उत्सवों, पर्वों से हमारा मन नए सोच–विचार तथा परिश्रम के लिए फिर से तरोताजा हो जाते हैं। पर्वों–उत्सवों को मनाने के माध्यम से हमारी सांस्कृतिक एवं धार्मिक परंपरा की अविरल धारा निर्बाध गति से सदैव प्रवाहित होती रहती है।

संदर्भ ग्रंथ

(1) लोक जीवन और साहित्य – रामविलास शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
(2) मानव और संस्कृति – श्यामाचरण दुबे, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
(3) सांस्कृतिक मानवशास्त्र – मेलिवल जे० हर्सकोवित्स –अनुवाद – रघुराज गुप्त, भारती भवन देहरादून।
(4) हौलदार – शैलेश मटियानी
(5) शालवनों का द्वीप– शानी
(6) सूरज किरण की छांव – राजेंद्र अवस्थी
(7) वन के मन में – योगेंद्रनाथ सिन्हा
(8) रतिनाथ की चाची – नागार्जुन
(9) जंगल के फूल – राजेंद्र अवस्थी
(10) कोहरे में खोए चाँदी के पहाड़ – जयप्रकाश भारती
(11) कब तक पुकारूं– रांगेय राघव
(12) ब्रह्मपुत्र – देवेंद्र सत्यार्थी
(13) सफेद मेमने – मणि मधुकर
(14) पानी के प्राचीर – रामदरश मिश्र
(15) मैला आंचल – फणीश्वरनाथ रेणु
(16) परती परिकथा – फणीश्वरनाथ रेणु
(17) नई पौध – नागार्जुन
(18) सागर, लहरें और मनुष्य – उदयशंकर भट्ट
(19) दुखमोचन – नागार्जुन